लोक सभा आम चुनाव

न कोई भरम, न कोई उम्मीद–फिर भी चुनाव-दर-चुनाव एक ही रास्ता-क्रान्तिकारी परिवर्तन का रास्ता

तेरहवीं लोकसभा चुनाव की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है। महज तीन सालों में तीसरी बार जनता इस मुश्किल सवाल के सामने खड़ी है – किसका चुनाव किया जाये ?

सारे राजनीतिक पण्डित यह भविष्यवाणी कर रहे हैं कि एक बार फिर त्रिशंकु संसद बनेगी। चुनावी मोर्चों और गठबन्धनों के सभी नेताओं का गणित भी यही निष्कर्ष निकाल रहा है। शासक पूंजीपति वर्ग और उनके साम्राज्यवादी बड़े भाई भी चिन्तित हैं कि बैताल यदि फिर उसी डाल पर बैठा, टिकाऊ सरकार नहीं बनी तो उदारीकरण-निजीकरण का पाटा बेरोक–टोक कैसे चलायेगा ? बीमा विधेयक का क्या होगा ? जनता को भी किसी बदलाव की कोई उम्मीद नहीं। फिर भी चुनाव होगा, वोट पड़ेंगे और एक बार फिर कोई न कोई गठबन्धन सरकार में बैठकर जनता पर सवारी गांठने का मौका पा ही जायेगा।

लोग बार–बार चुनाव से आजिज आ चुके हैं, इसमें अब कोई शक नहीं। कोई चुनावी नारा लुभा नहीं पा रहा है – न कारगिल न स्थिरता न देशी-विदेशी का षट्राग इसमें भी दो राय नहीं। फिर भी कुछ लोग वोट डाल ही आयेंगे – जाति-धर्म के नाम पर, क्षेत्र-भाषा के नाम पर पैसे के लालच में या महाबलियों की बन्दूकों से डर कर या अन्य किसी स्थानीय आधार पर। लोग यदि वोट न डालने पर अड़ ही जायेंगे तो सत्ता की बन्दूकों के दम पर जबरिया डलवाया जायेगा, जैसा कश्मीर घाटी में हो रहा है।

जनतंत्र के नाम पर यह खेल-तमाशा देखते-देखते विगत बावन वर्षों में कई पीढ़ियां बुढ़ा चुकी हैं। कांग्रेस, भाजपा, जनता दल, सी०पी०आई०, सी०पी०एम० और अन्य क्षेत्रीय पार्टियों में कोई फर्क नहीं है – न नीति का न रीति का – फिर भी यह जनतंत्र टिका हुआ है। गाड़ी खिंचती जा रही है। जनता रोज-रोज लाठी-गोली खा रही है, बदहाली से त्रस्त है और भविष्य से मायूस, फिर भी वह इसे मटियामेट कर अपने दुर्भाग्य से पीछा छुड़ा नहीं पा रही है, क्यों ? आज यही सबसे बड़ा सवाल है, सबसे अहम मुद्दा है। भले ही चुनावी हुलहपाड़े में यह उभर न पा रहा है, इससे कोई आंख नहीं चुरा सकता।

इसका एकमात्र जवाब है कि जनता के सामने कोई विकल्प नहीं है। कोई व्यवस्था अपने आप ध्वस्त नहीं होती चाहे वह जितनी जन विरोधी हो। जनता को वह रास्ता नहीं दिखायी दे रहा है जिस पर चलकर वह अपनी बदकिस्मती की अन्धेरी गुफा से बाहर निकल सके। यह विकल्पहीनता आखिर क्यों है ?

इसका कारण भी बिल्कुल साफ है। देश में मौजूद क्रान्तिकारी शक्तियां इतनी बिखरी हैं, कमजोर हैं कि वे देश के राजनीतिक पटल पर अपनी कोई दमदार उपस्थिति दर्ज नहीं करा पा रही हैं और जब तक यह स्थिति बनी रहेगी तब तक आम लोग यही सोचते रहेंगे कि चूंकि क्रान्तिकारी बदलाव की कोई उम्मीद या विकल्प सामने नहीं है, तब तक इन्हीं पूंजीवादी दलों में से किसी को वोट दे दें। इस हल्की सी उम्मीद में कि शायद वे अपने चुनावी वायदों में से सौंवा हिस्सा भी पूरा करके थोड़ी बहुत राहत दे दें। सभी पूंजीवादी चुनावी पार्टियां और फासिस्ट साम्प्रदायिक ताकतें आम जनता की इस बेबसी और थकी-हारी मानसिकता का भरपूर लाभ उठा रही हैं।

हालांकि, धीरे-धीरे यह सच्चाई भी अब आम लोगों के सामने काफी हद तक स्पष्ट हो चुकी है कि मौजूदा राजनीतिक अस्थिरता और उनकी तबाही-बरबादी से मुक्ति इस व्यवस्था में नामुमकिन है और इसीलिए, किसी नये रास्ते की तलाश और बदलाव की छटपटाहट एवं अकुलाहट भी है। लेकिन, यह भी इतिहास का एक सच है कि आम जनता स्वयं अपनी मुक्ति का रास्ता तलाशकर स्वतः स्फूर्त ढंग से उस पर नहीं चल पड़ती। यह जिम्मेदारी समाज के जागरूक, संवेदनशील अगुवा तबकों की होती है कि वे परिस्थितियों का सही-सटीक मूल्यांकन करके आम जनता को मुक्ति का रास्ता दिखायें, उनके सामने ठोस विकल्प रखें।

यह सच्चाई चाहे जितनी भी कड़ुवी हो, हमें स्वीकार करना ही होगा कि जो क्रान्तिकारी ताकतें किसानों-मजदूरों और तबाह-बदहाल मध्य वर्ग को नये मुक्ति संघर्ष में नेतृत्व दे सकती हैं वे दशकों से बिखराव और ठहराव की स्थिति को तोड़ नहीं पा रही हैं। गलत नीतियों पर कठमुल्लावादी अड़ियलपन के कारण क्रान्तिकारी ताकतों का पुराना नेतृत्व अपना दायित्व नहीं निभा सका है और अब वह तेजी से अप्रासंगिक होता जा रहा है।

अब रास्ता बस यही है कि जनता को नेतृत्व देने वाली क्रान्तिकारी शक्तियों का नया नेतृत्व सामने आये और नयी स्थितियों को समझकर नीतियां-रणनीतियां बनाये।

यह चुनौती और वक्त की जरूरत दोनों है। क्रान्तिकारी आन्दोलन के बिखराव के बुनियादी कारणों की तलाश कर और उससे जरूरी सबक निकालकर जनता के सामने यदि ठोस विकल्प प्रस्तुत होगा तो आम जनता भी भ्रमों की बची-खुची चादर उतार फेंकने और बदलाव के रास्ते पर चलने में देर नहीं करेगी। क्योंकि यह भी इतिहास का सच है कि विकल्प के अभाव और थकी-हारी मानसिकता में जीने वाली जनता उम्मीदें जगने के बाद पूंजीवादी व्यवस्था का क्रिया-कर्म करके ही दम लेती है।

इसलिए समाज के सभी जागरूक लोगों को और विशेषकर नौजवानों को आज की परिस्थितियों और इतिहास की सच्चाइयों को समझते हुए सबसे पहले खुद निराशा की खोल से बाहर आना होगा। समूची पूंजीवादी-साम्राज्यवादी दुनिया आज असाध्य संकटों से त्रस्त है, यह कोई सैद्धान्तिक-किताबी जुमलेबाजी नहीं वरन् एक वैज्ञानिक-ऐतिहासिक सच का बयान है। देश के अन्दर विगत एक दशक में निजीकरण-उदारीकरण की जो नीतियां अमल में लायी जा रही है, आज उनके नतीजे भी एकदम सतह पर सामने आ रहे हैं। जनता का गुस्सा बारूद में बदलकर अन्दर ही अन्दर विस्फोटक स्थिति की ओर बढ़ता जा रहा है।

इसलिए, आज जरूरत है साहसपूर्वक आगे बढ़ने और पराजय, निराशा और निष्क्रियता के अन्धेरे रसातल से बाहर निकलने के लिए जनता को ललकारने की। तभी कुछ लोगों का यह विश्वास सबका विश्वास बन सकेगा कि रास्ता एक ही है – क्रान्तिकारी परिवर्तन का रास्ता। ❑